RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

महर्षि दयानन्द सरस्वती 200 वीं जयन्ती 1824-2024

वर्षः 50, अंक : 11 एक प्रति : 2 रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 11 जून, 2023
विक्रमी सम्वत् 2080, सृष्टि सम्वत् 1960853124
दयानन्दाब्द : 199 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–50, अंक : 11, 8-11 जून 2023 तदनुसार 28 ज्येष्ठ, सम्वत् 2080 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

ईश्वर सब के कर्मों को जानने वाला है

ले०-आचार्य ज्ञानेश्वरार्य

युंजते मन उत युंजते धियो,
विप्रः विप्रस्य बृहतो विप्रश्चितः।
विहोत्रा दधे वयुना विदेक,
इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः।।

ऋग्वेद. ५-८१-१

शब्दार्थ-युंजते = जोड़ते हैं, **मनः** = अपने मन को, **उत** = और, **युंजते** = जोड़ते हैं, **धियः** = बुद्धि को, **विप्र** = विधि कर्मों को, **दधे** = धारण करता है, **वयुनाविद्** = सबके कर्मों को जानने वाला है, **एक इत** = अकेला ही, **मही** = महान्, **देवस्य** = देव की, **सवितुः** = सबके उत्पादक की, **परिष्टुतिः** = सच्ची **स्तुति** = प्रार्थना-उपासना करनी चाहिए।

भावार्थ-आज देश-विदेश में मनुष्य जीवन को सुखी बनाने के लिए बाहरी दृश्यमान् वस्तुओं के स्तर को श्रेष्ठ बनाने हेतु बहुत प्रयास किया जा रहा है। किन्तु सुख-दुःख के मूल कारण मन को श्रेष्ठ बनाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया जा रहा है। बुद्धि को उत्कृष्ट बनाने के लिए कोई योजना नहीं बनाई जा रही है। मनुष्य समाज के सुधार हेतु चाहे जितना परिश्रम किया जाये किन्तु जब तक मनुष्यों के मन को सात्विक, पवित्र, शुद्ध विज्ञान वाला नहीं बनाया जाएगा तब तक विश्व में विद्यमान बुराईयों का अन्त नहीं होगा।

अधर्म, बुराई, दोष कुछ भी कहें ये सब पहले मन में ही उत्पन्न होते हैं। मन तक रहने वाली बुराई को पाप कहते हैं। वही बुराई जब वाणी में आती है और वाणी से आगे बढ़कर शरीर में क्रियान्वित होती है तो वह बुराई अपराध रूप में सब के समक्ष आ जाती है। पाप अदृश्य है किन्तु अपराध दृश्यमान् है। चाहे कितने ही कानून बना दिये जायें, चाहे एक एक पुलिस वाला एक एक व्यक्ति के पास नियुक्त कर दिया जाये फिर भी मन में उत्पन्न होने वाले पापों को, दुर्भावनाओं को ये सब रोकने में समर्थ नहीं होंगे। इसका तो मात्र यही उपाय है कि मनुष्यों के मन के पास एक ऐसा समर्थ पुलिस वाला नियुक्त किया जाए जो मन में पाप उत्पन्न होते ही उसको संकेत करे, भयभीत करे और पाप के कारण मिलने वाले दुःख रूपी फलों को दर्शावे। यह मन, बुद्धि और आत्मा में पापवृत्ति को रोकने में समर्थ पुलिस वाला और कोई नहीं ईश्वर ही है।

धार्मिक, बुद्धिमान् माता-पिता के नियंत्रण-निर्देश में चलने वाला बच्चा बुराईयों से बचकर शीघ्र ही उन्नति कर लेता है। इसके विपरीत अनाथ या माता-पिता की आज्ञा न मानने वाला बालक अनेक प्रकार के दोषों से युक्त होकर पतन को प्राप्त हो जाता है। ठीक ऐसे ही सर्वपालक, सर्वज्ञ, न्यायकारी ईश्वर के अनुशासन में चलने वाला मनुष्य सारे पापों-अपराधों से बचकर ईश्वर के ज्ञान, बल, उत्साह के सहारे जीवन को सफल बना लेता है और ईश्वर को न जानने वाला या उसके निर्देश का पालन न करने वाला अनिष्ट कर्मों को करके दुःख सागर में डूब जाता है।

जब से यह संसार बना है तब से इस धरती पर मूलभूत रूप से कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। सूर्य भी वैसा ही और चन्द्रमा भी वैसा ही है। ऋतुएँ, दिन, रात वैसे ही चल रहे हैं। आकाश, नदियाँ, समुद्र, पर्वत सभी वैसे ही हैं। पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष, वनस्पति, औषधि, कन्द-मूल, फलादि में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। मनुष्य के हाथ-पाँव, आँख, नाक, कान आदि अवयव भी वैसे ही हैं। यदि कोई चीज बदली है तो केवल मन-बुद्धि बदले हैं। मन-बुद्धि का भौतिक स्वरूप तो वैसा ही है, मात्र उनमें रहने वाला ज्ञान-विज्ञान बदल गया है और इसी के कारण मनुष्य का व्यवहार बदल गया है।

शास्त्रों में कहा गया है कि ''मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः'' अर्थात् मन में शुद्ध ज्ञान-विज्ञान होगा तो मनुष्य उत्तम व्यवहार करके दुःखों से बचता रहेगा और मन में अशुद्ध ज्ञान होगा तो निकृष्ट व्यवहारों से दुःख सागर में डूबा रहेगा। यही बात इस मन्त्र में कही गई है कि संसार में जो महान् व्यक्ति हैं वे अपने मन और बुद्धि को ईश्वर के साथ जोड़े रखते हैं। वह परमपिता परमात्मा जो सबका अन्तर्यामी है और प्रतिक्षण, अच्छे कर्मों के लिए मन में उत्साह, आनन्द, निर्भीकता उत्पन्न करता है और बुरे कर्मों के लिए भय, शंका, लज्जा और दुःख उत्पन्न करता है। अज्ञानी, अल्पज्ञानी या संशयी मनुष्य ईश्वर के साथ जुड़े होने के कारण उसके संकेत को समझ लेता है और बुरे कामों से बचकर अच्छे कार्यों को ही करता है। परिणाम स्वरूप दुःख, भय, बन्धन से बचकर ऐसे मनुष्य हर दिन, हर पल सुख, शान्ति, स्वतंत्रता का जीवन व्यतीत करते हैं। (शेष पृष्ठ 4 पर)

कर्म दर्शन

ले.-श्री डा० मंगलदेव शास्त्री एम.ए.

कर्ममार्गस्य श्रेष्ठत्वम्

कर्ममार्ग की श्रेष्ठता

''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंसमाः''

(यजु० ४०।२)

अर्थात्, तू इस संसार में कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा कर।

केवल शुष्क ज्ञान या निरीह शुभ-संकल्पों से ही मनुष्य अपने जीवन को सफल नहीं बना सकता। उनकी वास्तविकता की परीक्षा कर्म की कसौटी पर ही हो सकती है। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन नीचे के पद्य में किया गया है:-

नैव चिन्तनमात्रेण कार्य सिध्यति किंचन।

श्रेष्ठत्वं कर्ममार्गस्य श्रुतौ तस्माद्विधीयते।।१।।

केवल सोचने मात्र से कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता इसीलिये ऊपर दी हुई श्रुति में मनुष्य के लिए कर्म-मार्ग के श्रेष्ठत्व का विधान किया गया है।

अदीनाः स्याम

हम अदीन रहें

''अदीनाः स्याम शरदः शतम्।

भूयश्च शरदः शतात्।।

(यजु० ३६।२४)

अर्थात्, हम सौ वर्ष तक और सौ वर्ष से भी अधिक काल तक बराबर अदीन रहें।

हम जीवन के महत्त्व को समझें और दीनता के भाव से अपने को दूर रखते हुए सदा उन्नति-पथ पर आगे बढ़ते रहें-इसी विषय के प्रतिपादनार्थ नीचे का पद्य दिया जाता है:-

दृष्ट्वाप्यनन्तप्रसरां मानवो गतिमात्मनः।

आश्चर्य मूढतादोषाद् दीनं हीनं च मन्यते।।१।।

मनुष्य आत्मा की (अथवा अपनी) प्रगति या उन्नति के अनन्त प्रसार (= विस्तार) को देख कर भी आश्चर्य है, अज्ञान के दोष के कारण, अपने को दीन और हीन समझता है।

व्याख्या

मनुष्य प्रायः अपने मनुष्यत्व की महत्ता या गौरव का अनुभव नहीं करता। प्रकृति तथा परमात्मा ने उसे दृश्य जगत् के समस्त प्राणियों से ऊँचा स्थान दिया है। उसकी इस महत्ता के मूल में उसकी वह स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिसके कारण वह सदा अपनी वर्तमान स्थिति से ऊँचा उठना चाहता है।

उसकी इस स्वाभाविक प्रगतिशीलता के क्षेत्र का विस्तार अनन्त है। मनुष्यजाति के इतिहास में किसी भी मनुष्य ने किसी भी क्षेत्र में बड़ी से बड़ी उन्नति का जो मार्ग प्रदर्शित किया है वह मार्ग प्रत्येक मनुष्य के लिए खुला है। कम से कम ईश्वर ने उसमें ऐसी योग्यता और शक्ति दी है जिससे वह क्रमशः उस मार्ग पर आगे बढ़ सकता है।

शास्त्रों में मनुष्य द्वारा इन्द्रत्व, ऋषित्व, महर्षित्व, बुद्धत्व आदि महान् पदों की प्राप्ति के वर्णन दिये गये हैं। यहाँ तक कि मनुष्य ब्रह्मत्व (आनन्द) को भी प्राप्त कर सकता है। ये सारे वर्णन वस्तुतः इस सृष्टि में मनुष्य का अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान है-इसी महान् सिद्धान्त की व्याख्या रूप हैं।

परन्तु मनुष्य इस महान् सत्य को भूल कर प्रायः अपने को कितना तुच्छ, कितना दीन-हीन, समझता है और कितनी यातनाओं को उठाता है! कितने अनर्थ करता है!

जैसे एक करोड़पति का बालक, अपनी स्थिति को भुला कर, दर दर भीख मांगता फिरे, ठीक वही दशा संसार में प्रायः मनुष्यों की है। मनुष्यत्व के नाते अपनी स्वभाव सिद्ध महत्ता को भुला कर वह अपने को प्रायः दीन और हीन समझता है। आत्म-गौरव और सद्भिमान को छोड़ कर जहाँ वह एक ओर अपनी ही दुर्बलताओं और दुर्वासनाओं का दास बन जाता है, वहाँ दूसरी ओर दूसरों के सामने, जिनको अपनी अस्थायी और तुच्छ सफलताओं का उन्माद है, गिड़गिड़ाता है, या अपनी हीनता को अनुभव करके मानसिक यातना को भोगता है।

दूसरी ओर वह मनुष्य है जो मनुष्यत्व की वास्तविक महत्ता के बाटों से न तो अपने को तोल सकता है न दूसरों को। जैसे कोई सोने की असलियत की अपेक्षा कर के उसमें मिलावट का ही मूल्य लगावे, इसी प्रकार वह आकस्मिक और अस्थायी वैभव के आधार पर ही अपना और दूसरों का मूल्य आंकता है; और अपने अभिमान के सामने दूसरों को तृणवत् समझता है।

मनुष्य मनुष्य का शोषण करता है, मनुष्य मनुष्य की अवहेलना या तिरस्कार करता है, या अपने को दीन-हीन समझता हुआ अनुभव करता है कि वह कुछ नहीं कर सकता-ये सारी दुर्भावनायें वास्तव में एक ही बीमारी के दो रूप हैं। वह बीमारी मनुष्यत्व की स्वभाव-सिद्ध महत्ता का अनुभव न करना ही है।

दोनों दुर्भावनायें मनुष्य की वास्तविक प्रगति, उन्नति और विकास में बाधक हैं।

इसलिए मनुष्य का कर्तव्य है कि वह सतत इसका अनुभव करे कि मनुष्यत्व के नाते ईश्वर की सृष्टि में उसका पद अति महान् है। वह आत्म-गौरव को, मानव मात्र के गौरव को अनुभव करे, और इस आत्म गौरव के सहारे वह एक ओर अपने को अपनी ही दुर्बलताओं से बचावे और दूसरी ओर अपनी वास्तविक प्रगति के मार्ग में आने वाली बाहर की बड़ी से बड़ी बाधाओं को विश्वास और निष्ठा के साथ कुचल डालने को तैयार रहे। साथ ही दुराभिमान से अपने को बचाता हुआ, मनुष्य-मात्र का समान करता हुआ, आत्म-प्रगति और आत्म-कल्याण के अनन्त विस्तृत मार्ग की ओर बढ़ता रहे। इन्हीं भावनाओं को श्रुति ने अपने मधुर शब्दों में गाया है:-

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्मामृतं गमय।

असतो मा सद् गमय।।

प्रभौ कर्मफलन्यासः

कर्मफल को ईश्वर पर छोड़ना

''ईशा वास्यमिदसर्वं...

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः''

(यजु० ४०।१)

अर्थात्, सारे विश्व में अन्तर्यामी भगवान् व्याप्त हैं।... कर्म करने पर ईश्वर द्वारा जो भी फल प्राप्त हो उसका तुम उपभोग करो।

मनुष्य कर्म करके उसके फल के लिए व्यग्र न हो, इसका उपाय यही है कि वह कर्म करके उसके फल को ईश्वर पर छोड़ दें। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन युक्तिपुरः सर नीचे के पद्यों में किया गया है:-

लक्ष्यमुद्दिश्य यत्किञ्चित् कर्म प्रारभते जनः।

प्रायेण तत्फलावाप्तावशः कालमीक्षते।।१।।

मनुष्य किसी लक्ष्य के उद्देश्य से ही कर्म करता है परन्तु उसके फल की प्राप्ति प्रायः उसके हाथ में नहीं होती और उसके लिये उसे प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

तत्कालं तत्फलस्याप्तिः प्रायेण नहि दृश्यते।

किं चित्कालं प्रतीक्षा हि फलावाप्त्या अपेक्ष्यते।।२।।

उसके फल की प्राप्ति प्रायेण तत्काल नहीं देखी जाती, फल प्राप्ति के लिये कुछ काल तक प्रतीक्षा करनी ही पड़ती है।

प्रतीक्षासमये तस्मिन् व्यग्रता निष्प्रयोजना।

यतस्तस्याः फलप्राप्तौ कारणत्वं न विद्यते।।३।।

उस प्रतीक्षा के समय में चित्त की व्यग्रता नितरां व्यर्थ है। क्योंकि, फल की प्राप्ति में वह व्यग्रता कुछ भी सहायक नहीं होती।

कर्म कृत्वा ततस्तस्य फलप्राप्तावनुत्सुकः।

प्रसन्नश्च निरुद्वेगः स्वस्थ आसीत पण्डितः।।४।।

इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को कर्म करके उसके फल की प्राप्ति में उत्सुकता और उद्वेग को छोड़कर प्रसन्नचित्त और शान्त रहना चाहिए।

प्रभो कर्मफलन्यासस्तस्मै फलसमर्पणम्।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

पर्यावरण के संघटकों का संवर्धन वेदानुसार करना जरूरी है?

आज पर्यावरण के प्रदूषित होने की समस्या का मूल कारण मनुष्य की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाएं हैं। मनुष्य ने अपनी लालसा, लाभ तथा उन्माद से ग्रस्त होकर पृथिवी और जल पर अपना अधिकार समझकर उसका बुरी तरह से दोहन करना प्रारम्भ कर दिया है। जल सभी जीवधारियों के लिए जीवन है। मानव तथा पशु शरीर का ७०-८० प्रतिशत भाग जल ही है। जल के कारण ही मानव का रक्त तथा इसका प्रवाह, पाचन क्रिया, वृद्धि आदि क्रियाएं सम्भव हैं। पेड़-पौधों के लिए भी जल बहुत ही आवश्यक है। पौधों का लगभग ८०-९० प्रतिशत भाग जल का ही है। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए इन दोनों का संरक्षण आवश्यक है। वेदों में इनके संरक्षण के ऊपाय भी बताए गए हैं।

जल को व्यर्थ न गवाएं: जल के विषय में कहावत है कि जल ही जीवन है और यदि जल ही प्रदूषित होगा तो जीवन स्वत: ही प्रदूषित हो जाएगा। साथ ही विविध रोगों से मानव संक्रमित हो जाएगा। जल जीव जगत के समक्ष पेय रूप में, सफाई का साधन, विद्युत का जनक, यातायात का साधन, अग्नि शमनार्थ रामबाण, कृषि जगत का प्राण आदि रूपों में स्वीकारा जाता है। अधिकांश जीवधारी इसके बिना जीवित नहीं रह सकते। वेदों में जल की उपयोगिता और उसके महत्व पर बहुत बल दिया है। जल जीवन है, अमृत है, भेषज है, रोगनाशक है और आयुवर्धक है। जल को दूषित करना पाप माना गया है। जल के विषय में कहा गया है कि जल से सभी रोग नष्ट होते हैं। जल सर्वोत्तम वैद्य है। जल हृदय के रोगों को भी दूर करता है। वेदों एवं वैदिक साहित्य में जल की सुरक्षा सम्बन्धी दिशा-निर्देश देखने को मिलते हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि-

इमा आप: प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनी:।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना।। अथर्व-३.१२.९

अर्थात् अच्छे प्रकार से रोग रहित तथा रोग नाशक इस जल को मैं लाता हूँ। शुद्ध जलपान करने से मैं मृत्यु से बचा रहूँगा। अन्न, घृत, दुग्ध आदि सामग्री, तथा अग्नि के सहित घरों में आकर अच्छी तरह बैठता हूँ। जल ही मनुष्य की तृप्ति का मुख्य कारण है। जिस प्रकार मछली जल के बिना जीवित नहीं रह सकती, उसी प्रकार मनुष्य का अस्तित्व भी जल के बिना सम्भव नहीं है। कल्याणकारी जल की कामना करता हुआ मनुष्य ऋग्वेद के मन्त्र द्वारा प्रार्थना करता है कि:-

शं नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु न:।। ऋग्वेद- १०.९.४

अर्थात् सुखमय जल हमारे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए तथा रक्षा के लिए कल्याणकारी होवे। जल हम पर सुख-समृद्धि की वर्षा करें। अन्न, औषधियां, वनस्पतियों की उत्पत्ति का आधार जल है। जल के बिना इनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। जिन प्रान्तों की कृषि वर्षा के ऊपर निर्भर होती हैं वहां जल की अत्यधिक महत्ता दिखाई देती है। ऋग्वेद में जल से प्रार्थना की गई है कि

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ:।
आपो जनयथा च न:।। ऋग्वेद-१०.९.३

अर्थात् हे जल! तुम अन्न प्राप्ति के लिए उपयोगी हो, तुम पर जीवन तथा विभिन्न प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ तथा अन्नादि पदार्थ निर्भर हैं। राजा को निर्देश देते हुए यजुर्वेद में कहा गया है कि

माऽपो मौषधीर्हिंसीर्धाम्नो राजंस्ततो वरूण नो मुञ्च।। यजु. ६.२२

अर्थात् हे राजन! आप अपने राज्य के प्रत्येक स्थानों में जल और वनस्पतियों को हानि मत पहुँचाओ अर्थात् ऐसा उद्यम करो जिससे जल और वनस्पतियां हम सबको सतत रूप में मिलते रहें। यजुर्वेद के छठें अध्याय के 22वें मन्त्र में कहा गया है कि

मापो हिंसी:, मा ओषधीर्हिंसी:। यजु. ६.२२

अर्थात् जल और औषधियों को नष्ट मत करो। जल के निकट का स्थान पवित्रता की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया है। शास्त्रों में पर्वतों की निकटता और नदियों के संगम का विशेष महत्व है। इसी कारण प्राचीन ऋषि-मुनियों के आश्रम नदियों के किनारे और पर्वतों की गुफाओं में होते थे जो साधना के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण थे। ऋग्वेद के मन्त्र में कहा गया है कि

उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्।।
धिया विप्रोऽजायत।। ऋग्वेद. ८.६.२८

अर्थात् पर्वतों की निकटता और नदियों के संगम का वातावरण अधिक शुद्ध होता है।

वृक्ष-वनस्पतियों को बचाएं: वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में वृक्ष वनस्पतियों का बहुत ही महत्त्व वर्णन किया गया है। वृक्ष वनस्पति मनुष्य को जीवनी शक्ति देते हैं और उसका रक्षण करते हैं। औषधियाँ प्रदूषण को नष्ट करने का प्रमुख साधन हैं। इसलिए उन्हें विषदूषणी कहा गया है। वेद में वृक्षों को पशुपति या शिव कहा गया है। ये संसार के विष कार्बनडाईआक्साईड को पीते हैं और इस प्रकार ये शिव के तुल्य विषपान करती हैं और प्राणवायु या ऑक्सीजन रूपी अमृत देती हैं। अत: वृक्षों को शिव का मूर्तरूप समझना चाहिए।

इसी आधार पर ऋग्वेद में वृक्षों को लगाने का आदेश है। ये जल के स्रोतों की रक्षा करते हैं। वृक्ष हमें ऑक्सीजन देते हैं और बदले में कार्बनडाईऑक्साईड लेते हैं। वृक्षों की महिमा बताते हुए ऋग्वेद में कहा है कि वृक्ष और वनस्पतियों को उगाओ, वृक्षारोपण करो। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए वनों को काटता ही जा रहा है और नए वृक्ष नहीं लगाता जिससे पृथवी पर वायु प्रदूषण बढ़ रहा है। यजुर्वेद में कहा गया है कि वनस्पतियां ऐसी हों जिनमें सैंकड़ों, हजारों अंकुर फूटें क्योंकि सैंकड़ों अंकुर फूटने वाली वनस्पति ही दीर्घायु प्रदान करती है। ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण में वनस्पतियों को मानव जगत् के प्राण कहा गया है-

प्राणो वनस्पति:।। कौषी.- १२.७ प्राणो वै वनस्पति:।। ऐत. २.५। कौषीतकि ब्राह्मण में वनस्पतियों को परमात्मा का उग्ररूप भी कहा गया है-

यद् उग्रो देव ओषधयो वनस्पतयस्तेन।। कौषी. ६.५

परमात्मा के भी दो रूप कहे जाते हैं। कल्याणकारी और विनाशकारी, शिव और रूद्र। संसार को प्राण देने वाले शिव हैं, मंगलकारी हैं और रोग प्रदूषण आदि के संहारक होने से रूद्र हैं। अत: यदि मनुष्य वनस्पतियों का संहार करेगा तो प्राण शक्ति के अभाव में नष्ट हो जाएगा। मनुष्य को पौष्टिक उत्तम अन्न तथा औषधियों का सेवन करते हुए उन्नति करनी चाहिए। पर्यावरण के शुद्ध होने पर समय-समय पर वर्षा होती है। अनावृष्टि या अतिवृष्टि कभी भी नहीं होती। समय पर वर्षा होने के कारण पृथ्वी के गर्भ से उत्तम-उत्तम औषधियाँ उत्पन्न होती हैं जिन औषधियों के द्वारा मनुष्य स्वस्थ और नीरोग जीवन को प्राप्त करता है। पर्यावरण की समस्याओं को लेकर सभी चिन्तन करते हैं। पर्यावरण का प्रदूषित होना पूरे विश्व के लिए एक जटिल समस्या है परन्तु इस समस्या का समाधान किस प्रकार हो? वर्तमान में हमें पर्यावरण की समस्या को खत्म करने के लिए हमें वैदिक चिन्तन को आधार बनाना होगा। वेदों के अनुसार यदि हम वनस्पतियों, औषधियों, वृक्षों तथा जल और वायु का संरक्षण करते हैं तो इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। इनका संरक्षण न होने के कारण ही आज प्रदूषण की समस्या फैलती जा रही है, जल दूषित हो रहा है, शुद्ध वायु नहीं मिल रही है जिससे अनेक प्रकार की बीमारियां बढ़ती जा रही हैं।

आज कल जो समस्या हम सबके सामने आ खड़ी हुई है इसका मुख्य कारण तो यही दिखाई देता है कि हमने अपने वेदों की बातों की ओर ध्यान न देकर केवल प्रकृति के पदार्थों का दोहन किया और संवर्धन की ओर ध्यान ही नहीं दिया। आजकल हमारे भारत में हरियावल नामक संस्था इस संवर्धन के कार्य को हर शहर में कर रही है। हम सब आर्य जन भी इसके साथ जुड़ कर पर्यायावण के संवर्धन में अपना योगदान डालने का भरसक प्रयास करें। तभी धरती पर जीवन संभव होगा।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

प्रभु मिलन का स्थान

ले.-नरेन्द्र आहूजा

मनुष्य जीवन भर ईश्वर की खोज में मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों, डेरों और जाने कहां कहां घूमता फिरता रहता है। पूरा का पूरा जीवन यूं ही तलाश में निकल जाता है समय लौट कर नहीं आता परन्तु प्रभु मिलन की आस अधूरी ही रह जाती है। कई बार तो बड़े से बड़ा आस्तिक व्यक्ति भी निराशावादी होकर नास्तिक बन जाता है। यह सोचकर कि मैं बेकार किसी मृगतृष्णा के पीछे भाग रहा हूँ ईश्वर का तो अस्तित्व ही नहीं है।

अंत में यही प्रश्न उठता है मनुष्य प्रभु से कहां मिल सकता है। आखिर वह कौन सा स्थान है जहाँ जीवात्मा परमात्मा से मिल सकता है। यदि आप किसी भी व्यक्ति विशेष से मिलना चाहते हैं तो आपको उसका सही पता मालूम होना चाहिए। फिर आपको उस स्थान तक जाने का रास्ता भी मालूम होना चाहिए। केवल पता और रास्ते का ज्ञान ही काफी नहीं है अपितु आपको स्वयं उस रास्ते पर चलकर उस स्थान तक पहुँचना भी होगा तभी आप उस व्यक्ति विशेष से मिल सकते हैं।

अब यदि आप ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहते हैं तो आपको ईश्वर का पता मालूम होना चाहिए कि इस सृष्टि का निर्माता, पालनकर्ता, संहारक व न्यायकर्ता परमपिता परमेश्वर रहता कहां है। ना केवल आपको ईश्वर के सच्चे स्वरूप और स्थान का ज्ञान आवश्यक है अपितु आपको उस स्थान तक पहुँचने के रास्ते का ज्ञान भी आवश्यक है। यदि हमें किसी का पता तो मालूम हो लेकिन वहाँ तक पहुँचने के मार्ग का पता ना हो तो भी हम उस तक नहीं पहुँच सकते।

ईश्वर का पता यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के प्रथम मंत्र में बड़े स्पष्ट तरीके से दिया गया है-

ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

वह परमपिता परमेश्वर जगत्यां जगत अर्थात पूरे जगत को अंदर बाहर हर ओर से आच्छादित किए हुए है। आर्य समाज के दूसरे नियम में महर्षि दयानन्द ने बड़े स्पष्ट रूप से ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए ईश्वर को निराकार सर्वव्यापी लिखा है अर्थात् परमपिता परमेश्वर सृष्टि के कण कण में विद्यमान है तो हमें दिखाई क्यों नहीं देता हम ईश्वर की अनुभूति क्यों नहीं कर पाते। या फिर ईश्वर के सर्वव्यापी होने में कोई संशय है। प्रभु के सर्वव्यापी होने की बात इससे स्पष्ट है कि ईश्वर सृष्टि का निर्माता, पालनकर्ता, संहारक व न्यायकर्ता है और यह तभी संभव है जब परमपिता परमेश्वर सर्वव्यापी होकर सृष्टि के प्रत्येक स्थान कण-कण में विद्यमान हो। क्योंकि कोई भी कार्य कर्त्ता के बिना संभव नहीं है और कर्त्ता हर उस स्थान पर मौजूद हो तभी कार्य का संपादन कर सकता है। इससे यह स्थापित होता है कि ईश्वर सर्वव्यापी है।

फिर प्रश्न उठता है कि ईश्वर सर्वव्यापी है तो हमें दिखाई क्यों नहीं देता। हम उसकी आवाज क्यों नहीं सुन सकते। मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों की अपनी सीमायें है। हम कानों से सुन सकते है पर देख नहीं सकते। आँखों से देख सकते है पर सुन नहीं सकते। हाथों से छूकर महसूस कर सकते हैं परन्तु देख या सुन नहीं सकते। इन ज्ञानेन्द्रियों की सीमा केवल भौतिक जगत की वस्तुओं तक है। ईश्वर को देखना सुनना अनुभव करना मनुष्य शरीर की ज्ञानेन्द्रियों से संभव नहीं है।

प्रश्न फिर वहीं आकर खड़ा हो जाता है कि हम ईश्वर से कैसे मिल सकते हैं। इसके उत्तर के लिए अब हमें स्वयं को समझना होगा। आखिर हम कौन हैं। मनुष्य भौतिक रूप से दिखाई देने वाला शरीर या फिर इस शरीर को उपयोग में लाने वाला शरीरी जीव या आत्मा है। न्यायकर्ता परमेश्वर प्रत्येक जीव को उसके पूर्व जन्मों के कर्मों के आधार पर न्याय तुला पर तोलते हुए सद्कर्मों के पुरस्कार स्वरूप यह अनमोल मानव तन प्रदान करते हैं। मानव तन को ही अनमोल इसलिए कहा क्योंकि यही एक योनि है जो कि भोग योनि के साथ साथ कर्म योनि भी है। हमारे कर्म ही ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में हमारी नियति या प्रारब्ध का कारण होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि मानव शरीर तो उपयोग वा उपभोग के लिए ईश्वर प्रदत्त एक साधन मात्र है। हम यह भौतिक शरीर नहीं हैं। पाँच तत्वों से मिलकर बना यह शरीर तो मरणधर्मा है जबकि हम अर्थात देही, शरीरी वा आत्मा तो अजर अमर अविनाशी है जो कि योगीराज श्रीकृष्ण के गीता उपदेश से स्पष्ट है-

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।

न चैनं कलेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः।।

अब इससे स्पष्ट हो गया कि यदि हम अर्थात् आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं तो आत्मा और परमात्मा का एक स्थान पर होना आवश्यक है। अब आत्मा इस मानव शरीर को छोड़कर बाहर निकल कर परमात्मा से मिलने नहीं जाएगी क्योंकि आत्मा के शरीर छोड़ देने, देही के देह से निकल जाने इसी वियोग का नाम ही तो मृत्यु है। जबकि हम तो जीते जी परमात्मा से मिलना चाहते हैं।

परमपिता परमेश्वर सर्वव्यापी होने के कारण अति सूक्ष्म रूप में हम सभी के हृदय में विद्यमान है गीता उपदेश में योगेश्वर कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा है-

'ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशे तिष्ठति अर्जुनः' अर्थात् सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी परमेश्वर सबके हृदय रूपी मन्दिर में विद्यमान है। ईश्वर के सर्वव्यापी गुण की स्थापना यजुर्वेद (40/5) में की है **''तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वास्यास्य बाह्यतः''** अर्थात् ईश्वर सबके भीतर बाहर विद्यमान है क्योंकि वह सर्वव्यापी है।

हम ईश्वर के अत्यन्त निकट हैं। आँख से भौंह की दूरी अधिक है पर आत्मा की परमात्मा से कोई दूरी नहीं। फिर भी इस परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाते तो इसमें हमारा ही दोष है। अपने अंदर बैठे अन्तर्यामी परमेश्वर को ढूँढने के लिए हम बाहर व्यर्थ धक्के खाते रहते हैं। अपने अंदर झाँक कर देखने का समय ही नहीं निकाल पाते। इसका कारण हमारी रूचि ईश्वर में नहीं अपितु ईश्वर प्रदत्त प्रकृति के दोहन और ऐश्वर्यों के भोग में अधिक रहती हैं। हम बाहरी भोग विलासिता में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि हमारे पास अपने ही अंदर बैठे अन्तर्यामी ईश्वर के लिए कोई समय ही नहीं है। शायद इसीलिए हमारे इतने निकट होने के बावजूद ईश्वर से हम अत्यंत दूर होते हैं। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के पांचवे मंत्र में भी यही भाव है **''तद्दूरे तद्वन्तिके''** अर्थात् ईश्वर हमारे निकट है पर हम उससे दूर हैं। हमारी ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ, अज्ञानता, अशिक्षा, भौतिक सुख-सम्पदा की लालसा आदि कुत्सित तामसी वृत्तियाँ ही हमें ईश्वर से दूर करती हैं।

ईश्वर से मिलने का एकमात्र स्थान हमारा अन्तःकरण ही है अपनी आत्मा में ही हम प्रभु को मिल सकते हैं। जहाँ जीवात्मा और उसमें अति सूक्ष्म रूप में परमात्मा दोनों एक साथ रहते हैं।

पृष्ठ 1 का शेष-ईश्वर सब के कर्मों को...

आओ ईश्वर भक्त-आस्तिक महानुभावो! सर्वात्मना अपने मन-बुद्धि-आत्मा को ईश्वर को पूर्ण समर्पित करके ही सारे व्यवहारों को करें। जिससे हम से कोई भी अधर्म, पाप, अपराध न हो और सर्वदा आनन्द में ही रहें। हे ईश्वर! आप भी अब हमारे पर परमकृपा करके हमारे अन्तःकरण में सदा विद्यमान रहते हुए हमें सतर्क करते रहें कि कौन सा कर्म उत्तम है और कौन सा निकृष्ट। हमें आप पर पूर्ण विश्वास है कि आप अपने समर्पित भक्तों को अवश्य ही पापों अपराधों से बचायेंगे। कभी भी दुःख का भागी नहीं बनायेंगे। क्योंकि आपका तो यह स्वभाव ही है कि अंगीकृत को सदा सुख ही देते हैं। अतः हमारे पर अपनी कृपा अवश्य बनाये रखें।

कर्म का सिद्धान्त

ले.-श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय

(गतांक से आगे)

प्रश्न ९७. तो क्या हम अपने भोगों में परिवर्तन कर सकते हैं?

उत्तर:-चाहें तो कर सकते हैं। या यों कहना चाहिये कि अवश्य कर सकते हैं और करते रहते हैं। एक लौकिक उदाहरण लीजिये। मैंने मार्च भर नौकरी की। पहली अप्रैल को २०० रु० वेतन रूप में मिला मार्च की नौकरी कर्म थी। २०० रु० वेतन उसका फल है। इसको आप जाति, आयु और भोग तीनों ही कह सकते हैं। क्योंकि यह रुपयों की प्राप्ति एक अंश में परिस्थिति, काल और सुख दु:ख तीनों का ही विधायक है। इन दो सौ रुपयों को यदि मैं बुद्धिमत्ता से व्यय करूँ तो उनसे बहुत से आगे होने वाले शुभ कर्मों का साधन उत्पन्न कर सकता हूँ और यदि उसी दिन जुआ खेल कर हार जाऊँ तो आज ही जाति, आयु और भोग तीनों को गड़बड़ में डाल सकता हूँ। यह दो सौ रुपये की इयत्ता ठीक ठीक मेरी पिछली कमाई का फल थी। यदि केवल पिछली कमाई का ही होता और किसी प्रकार मेरे भविष्य का उत्तरदायित्व या कर्तृत्व मुझसे छीन लिया जाता और मैं ऐसी अवस्था में डाल दिया जाता कि कर्तु अकर्तुं और अन्यथाकर्तुं के सर्वथा अशक्त होता तो २०० रु० की इयत्ता में कमी या बढ़ती न होती। परन्तु यह तो मेरे स्वाभाविक अधिकार पर कुठाराघात होता। कर्तृत्व और उसका उत्तरदायित्व मेरा जन्म सिद्ध नहीं अपितु नैसर्गिक अधिकार है। यह दो सौ रुपये दिये ही मुझे इसलिये गये हैं कि अगले कर्मों के लिये क्षेत्र बना सकूँ। अत: मेरे अगले कर्म इस इयत्ता को भी कम या अधिक करेंगे। इयत्ता फल की है। फल से उत्पन्न होने वाले कर्मक्षेत्र की नहीं। इसलिये मुझे अधिकार है कि मैं उस फल से अपने क्षेत्र को उत्कृष्ट या निकृष्ट कर सकूँ। ईश्वर ने पिछले कर्मों का फल देकर मेरे स्वातंत्र्य को छीना नहीं अपितु स्वातंत्र्य के प्रयोग के लिये साधन उत्पन्न कर दिया। मेरा अधिकार है कि आज दुर्व्यसनों में फँसकर दो सौ रुपयों को नष्ट कर दूं और कल से भीख माँगता फिरूँ। अथवा इस प्रकार से व्यय करूँ कि कल कई गुणा अधिक साधन प्राप्त हो जाएंगे। इसी प्रकार पिछले जन्म के कर्मों द्वारा जो मुझको जाति, आयु और भोग की प्राप्ति हुई उसको मैं वर्तमान जन्म के आचरणों द्वारा घटा बढ़ा सकता हूँ। इसीलिये वेद तथा शास्त्रों में आयु की वृद्धि, उन्नति की वृद्धि और सुख की वृद्धि के साधन दिये जाते हैं। और मृत्यु, रोग, ह्रास तथा दु:ख के कम करने के भी साधन दिये जाते हैं। समस्त आचारशास्त्र की भित्ति ही इस सिद्धान्त के ऊपर है कि हम आयु, वातावरण तथा सुख में वृद्धि कर सकते हैं। किसी शास्त्रों में ऐसा नहीं लिखा कि आयु नहीं बढ़ सकती, परिस्थिति नहीं बदल सकती, भोगों में परिवर्तन नहीं हो सकता। योगदर्शन का जो सूत्र इस प्रसंग से सम्बद्ध है उस सूत्र में ऐसा नहीं है, न अगले किसी सूत्र में इसका उल्लेख है। विभूतिपाद में जो विभूतियाँ दी हुई हैं उन सबका प्रभाव जाति आयु और भोग की प्राप्ति हुई तो उनका न्यून या अधिक होना भी रोक दिया गया। एक बात तो आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं। कर्मों का फल सुख या दु:ख के रूप में होता है। सुख या दु:ख मानसिक वस्तु है शारीरिक नहीं।

ज्ञानी और योगी लोग इस मानसिक दु:ख को ज्ञान द्वारा कम कर सकते हैं और मूर्ख बढ़ा सकते हैं। जिस पुरुष ने वैराग्य द्वारा अपने मन को वश में कर लिया, वह घोर से घोर दु:ख को असह्य से सह्य बना सकता है।

प्रश्न ९८. संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध कर्मों का क्या अर्थ है और इस विभाजन का आधार क्या है?

उत्तर जो कर्म मनुष्य करता है वह वर्तमान में क्रियमाण हैं, जो कर्म बिना फलित हुये इकट्ठे हो जाते हैं उनको संचित कहते हैं। संचित कर्मों में से जिनका विपाक हो जाता है। अर्थात् जो पक कर फल देने लगते हैं उनको प्रारब्ध कहते हैं। जो कर्म मैं इस समय अर्थात् वर्तमान में कर रहा हूँ वह क्रियमाण है, थोड़ी देर में यह वर्तमान काल भूत काल बन जायेगा, उस समय यह क्रियामाण कर्म संचित हो जायेंगे। संचित का अर्थ है इकट्ठा किया हुआ (सम्+चित)। हमको फल इन्हीं संचित कर्मों का मिलेगा। परन्तु समस्त संचित कर्म एक से नहीं होते, न उनका फल एक ही समय में मिलता है। मोटे रूप से आप समझ सकते हैं कि पालक का साग बोने से दो मास में फल मिल जाता है। अमरूद का बीज बोने से कई वर्ष में फल लगता है। कटहल का बीज बोने से मुद्दत फल पाने की और भी अधिक हो जाती है। आप किसी को गाली देवें तो वह तुरन्त आपको गाली देगा या तमाचा मारेगा। यदि आप उसका माल छीन लें तो पुलिस में रिपोर्ट होगी और सजा पाते एक साल लग सकता है! यदि आप किसी को मार डालें तो सम्भव है कि आपको फाँसी पाने में दो तीन वर्ष लग जाय। इसी प्रकार कर्मों की व्यवस्था है। जो कर्म हमारे संचित हैं उनमें से दैवी मर्य्यादा के अनुसार कुछ का फल अभी मिलेगा कुछ का दो चार वर्ष में और कुछ का जन्म जन्मान्तर में। यह जान सकना मनुष्य के लिये कठिन है कि किस कर्म का फल कब मिलेगा; क्योंकि यद्यपि समस्त संचित कर्मों का लेखा सूक्ष्म रूप में हमारे अन्त: पटल कर अंकित है; परन्तु हम सबको पढ़ नहीं सकते। जिस प्रकार समस्त संचित ज्ञान का जो हमारे अन्त: पटल पर एकत्रित है प्रत्यक्ष ज्ञान हमको हर समय नहीं होता, कालान्तर में कुछ की स्मृति आ जाती है और कुछ की नहीं। इसी प्रकार यह भी है। जब कर्म पक कर फल देने लगते हैं तो उन्हीं का नाम प्रारब्ध हो जाता है अर्थात् क्रियमाण कर्म का अन्त संचित हो जाता है और संचित में से जो जो कर्मफल देने लगते हैं उनको प्रारब्ध कहते हैं। हमारा अधिकार क्रियामाण कर्मों पर है। चाहे करें चाहे न करें। परन्तु जब तीर कमान से निकल गया तो वापिस नहीं आ सकता।

''**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**'' (गीता, शिवपुराण)

क्योंकि वह संचित है। संचित कर्मों में किस कर्म का विपाक कब होगा यह ईश्वर की व्यवस्था से होता है, अर्थात् संचित कर्मों के पुंज में से कब कौन सा प्रारब्ध बन जायेगा। प्रारब्ध को लोग 'तकदीर' कहते हैं क्योंकि इसमें 'कुदरत' अर्थात् ईश्वर का हाथ है। हम विवश हैं। लेकिन इस तकदीर का मूल निमित्त तो तदबीर अर्थात् क्रियामाण कर्म ही थे।

वस्तुत: क्रियमाण कर्म ही कर्म है। क्योंकि कर्त्ता का स्वातंत्र्य क्रियमाण में ही विद्यमान है। ज्यों ही वह संचित हुआ, कर्म की वास्तविक परिभाषा से बाहर हो जाता है। उसे कर्मों का लेखा कह सकते हैं, कर्म नहीं। और प्रारब्ध कर्म नहीं अपितु फल है। अर्थात् वह पक कर फलरूप में परिवर्तित हो चुके। उसको कर्म केवल इसलिये कहते हैं कि फलों का मूल कारण हमारी दृष्टि से ओझिल न हो जाए और यह न समझ बैठें कि हमारे सुख या दु:खों का हमारे कर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न ९९. हम तो सुनते आये हैं कि हमारे पिछले जन्मों का फल इस जन्म में मिल रहा है और इस जन्म के कर्मों का अगले जन्म में मिलेगा।

उत्तर आपने जो सुना वह एक अंश में ठीक है लेकिन आधी सच्चाई है, आधी निराधार कल्पना है। सच्चाई इतनी है कि इस जन्म में जो फल सुख या दु:ख रूप में हमको मिल रहा है वह सभी इसी जन्म के कर्मों का नहीं है। इसमें बहुत कुछ पिछले जन्म या जन्मों का भी है, और जो कर्म हम इस जन्म में कर रहे हैं वह सभी इसी जन्म में फलीभूत न हो सकेगें। कुछ अगले जन्मों के लिये भी संचित रहेंगे।

निराधार कल्पना इतनी है कि इस जन्म में हमारे इस जन्म में किये हुए किसी कर्म का फल न मिलेगा। समस्त कर्मपुंज भविष्य के लिये इकट्ठा रहेगा।

इस निराधार कल्पना का एक दुष्परिणाम यह हुआ है कि हम भाग्यवादी हो गये हैं। हम समझते हैं

(शेष पृष्ठ 6 पर)

पृष्ठ 5 का शेष-कर्म का सिद्धान्त

कि इस जन्म में हमको जो दु:ख या सुख मिलना है उस पर इस जन्म के कर्म कुछ प्रभाव नहीं डाल सकते। दूसरा जन्म इतनी दूर है कि उसका भय कम हो जाता है। जब बच्चा जानता है कि कई छोटी बुराइयों की सजा माता पिता तुरंत दे देंगे तो वह डरता है। देर में दी जाने वाली बड़ी सजा का भी इतना भय नहीं होता जितनी तुरन्त दी जाने वाली छोटी सजा का। जिस काम के फलस्वरूप मुझे चालीस वर्ष पीछे पचास हजार मिलेगा उसका आकर्षण इतना नहीं होता जितना आज सायंकाल को मिल जाने वाले ५० रुपयों का होता है।

प्रश्न १००. कुछ भोगवादी ऐसा कहते हैं कि जो कर्म फल की आकांक्षा से किये जाते हैं वह कर्म नहीं अपितु भोग हैं। जैसे मैंने नौकरी की यह कर्म है। उसका वेतन १०० रु० मिला। यह है फल। इन १०० रुपयों से मैंने बाजार में जाकर भोजन वस्त्र खरीदे। यह कर्म नहीं अपितु फल अर्थात् भोग के ही सिलसिले का एक अंश है। इसी प्रकार हम जितने कर्म अपने स्वार्थ के लिये करते हैं वह सब भोग के ही अन्तर्गत आ जाते हैं। कर्म वही है जो हम अपने स्वार्थ के लिए नहीं अपितु परार्थ के लिये कर्तव्य समझकर करते हैं।

उत्तर यह क्लिष्ट कल्पना है। यथोचित बात नहीं। जो कर्म केवल परार्थ के लिये ही किये जायेंगे और कर्तव्य समझकर ही किये जायेंगे, यदि वही कर्म समझे जाएं और उनके अतिरिक्त और क्रियाओं को कर्म की कोटि से निकाल दिया जाए तो अशुभ कर्म तो कोई भी नहीं रहेगा। एक कर्म होगा और दूसरा फल-जिनको हम अशुभ कर्म कहते हैं, वह भोग के सिलसिले का ही एक अंश होंगे। चोर कहेगा कि मैंने चोरी न तो परार्थ के लिये की न कर्तव्य समझकर। मुझे भोग की आकांक्षा थी। उस भोग की पूर्ति के लिये ऐसा किया। इससे समस्त कर्तव्य शास्त्र ढोग हो जायेगा। वस्तु: जो क्रियायें हम स्वतंत्र से कर सकते हैं और जिनके करने न करने या उल्टा करने का हमको अधिकार होता है वह सब, चाहे छोटी हों चाहे बड़ी, कर्म की कोटि में आती हैं। हाँ, जो क्रियायें हम पूर्ण विवशता से करते हैं और जिनके होने में हमारा किंचित् भी अधिकार नहीं वह फल की निमित्त मात्र हो सकती हैं क्योंकि उनको हम नहीं करते, कोई कराता है। कल्पना कीजिये हमको कोई जल पिलाता है। हम पीते हैं। हमको अधिकार है कि न पियें। तो इस जल का पीना कर्म है। परन्तु यदि हम बेहोश पड़े हैं और कोई चिकित्सक हमारा मुँह यन्त्रों से खोल कर पानी डाल देता है तो भोग का निमित्त मात्र होगा और यह क्रिया दूसरे की होगी अपनी नहीं क्योंकि हमने नहीं की। इसके किसी अंश पर हमारा अधिकार नहीं है।

प्रश्न १०१ हम कोई काम स्वतंत्रता से नहीं करते। परिस्थिति करा लेती है। हम परिस्थितियों से जकड़े हुये हैं। हमारे वश में छोटी सी चीज भी नहीं है। स्वतंत्रता नाम मात्र की है। ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध पत्ता भी नहीं हिल सकता।

उत्तर क्या हमारी इच्छा भी परवशता के आधीन है?

प्रश्न १०२ हाँ। दो मनुष्य दो प्रकार की इच्छा करते हैं। एक चोरी की और एक धन की रक्षा की। चोर के जीवन की परिस्थिति बताती है कि चोर अन्यथा कर ही नहीं सकता था। और धन का स्वामी धन की रक्षा की इच्छा अपनी परिस्थितियों के कारण ही करता है। संसार का नियम अटल है। कोई टाल नहीं सकता। अत: स्वतंत्रता की दुन्दुभी बजाना व्यर्थ है। जब स्वतंत्रता नहीं तो क्या कर्म फल? क्या कर्तव्य और अकर्तव्य? क्या शुभ और क्या अशुभ?

उत्तर क्या स्वातंत्र्य की इच्छा भी परिस्थितियों के कारण ही होती है? यदि स्वतंत्रता कोई चीज़ नहीं तो हममें स्वंत्रता की इच्छा क्यों उत्पन्न होती है? और हम दूसरे मनुष्य के कर्मों के विषय में यह क्यों कहते है कि हमने यह भूल की। इसको ऐसा करना चाहिये था? या हमको अपने कर्मों पर पछतावा क्यों होता है कि यदि अमुक कार्य हम न करते तो अच्छा होता?

यह सम्भव है कि आज्ञा के विरुद्ध पत्ता भी न हिले। लेकिन जब हम झूठ बोलने के लिये अपनी जीभ हिलाते हैं तो ईश्वर की आज्ञा से नहीं; अपितु अपनी स्वतंत्रता से। इसीलिये झूठ बोलकर हम स्वयं भी समझते हैं कि हमने अशुभ किया और दूसरे भी हमारे विषय में ऐसी ही धारणा रखते हैं। इससे स्पष्ट है कि परिस्थिति का सिद्धान्त सीमित है असीम नहीं। आत्मतत्त्व परिस्थिति से कुछ ऊपर है। हमारी परतंत्रता एक अंश तक सीमित है सर्वांश में नहीं। यह ठीक है कि हम जो चाहें सो नहीं कर सकते, न चाहे जब चाहें तब कर सकते हैं और न जिस प्रकार चाहें कर सकते हैं। आँखों से सुन नहीं सकते। न कानों से उतना सुन सकते है जितना कि कभी कभी चाहते हैं जो हमको प्रिय लगे, अर्थात् इस अंश में हम परिस्थितिबद्ध हैं। परन्तु परिस्थिति भी तो सीमित है और उसमें हम परिवर्तन कर सकते हैं। दूर की चीज देखने के लिए उपनेत्र या अन्य यन्त्र बना सकते हैं। भीषण दृश्यों से आँखें मींच सकते हैं। हम अपनी परिस्थितियों को तोड़ने या कम करने के लिये सदा इच्छुक रहते है। यह हमारी नैसर्गिक प्रवृत्ति है। कैदखाने का कैदी भागने का अवसर ताकता ही रहता है। यदि परिस्थितियाँ ही सब कुछ होतीं तो ऐसी प्रवृत्ति कदापि न हो सकती। यही प्रवृत्ति हमारे पुरुषार्थ की मूल है। हमको विश्वास है कि यदि हम हाथ पैर मारेंगे तो कदाचित् बन्धन से छूट ही जायेंगे। इसी का नाम है आशा। जब मनुष्य सब चीज़ों को खो देता है तब भी आशा जीवित रहती है। आशा क्या है? अपने पुरुषार्थ पर विश्वास।

प्रश्न १०३ सायस या विज्ञान से पता चला है कि सृष्टि के सभी नियम अटल हैं। कोई तोड़ नहीं सकता। एक त्रिभुज के तीन कोण मिलकर सदैव १८०° के होंगे। जल सदैव हाइड्रोजन के दो और आक्सीजन के एक अणु से मिलकर बनेगा (HO2)। इसी प्रकार बहुत से नियम हैं जिनको कोई मनुष्य अन्यथा नहीं बना सकता। जैसे जड़ जगत् के अटल नियम हैं, इसी प्रकार चेतन जगत् अर्थात् प्राणिशास्त्र वा मनोविज्ञान के भी नियम हैं। इन्हीं का नाम है परिस्थिति। फिर कर्म करने में स्वतंत्रता कहाँ रही? जैसी परिस्थिति होगी वैसे हमारे विचार होंगे, वैसे वचन और तदनुकूल ही कर्म। इस प्रकार जिसको हम स्वतंत्रता कहते हैं वह भी परतंत्रता ही है, और जिसको हम चेतन कहते हैं वह भी जड़ का एक परिवर्तित रूप है। इस प्रकार कर्म का सिद्धान्त विज्ञान के सर्वथा विरुद्ध है। यदि प्रकृति के नियम अटल हैं तो भी विरुद्ध, और चलायमान हैं तो भी विरुद्ध; क्योंकि यदि प्राकृतिक नियम चलायमान लिये जाँय तो उनको नियम ही नहीं कह सकते और न यह निश्चित हो सकता है कि अमुक कर्म का अमुक ही फल होगा।

उत्तर यह ठीक है कि प्राकृतिक नियम अटल हैं और यह भी ठीक है कि चेतन प्राणियों के शरीरों द्वारा जो हम क्रियायें देखते हैं उनमें से अनेक ऐसी हैं जिन पर उनका वश नहीं है। वह अवश्यम्भावी है; परन्तु फिर भी यह कहना ठीक नहीं कि चेतन प्राणियों को उन पदार्थों से काम लेने में कुछ भी स्वतंत्रता नहीं।

यह ठीक है कि पानी के बनाने में हाइड्रोजन और आक्सीजन का अनुपात निश्चित है, परन्तु उसी अनुपात से हम कितना पानी बनावें या न बनावें, यह हमारे अधिकार में है। प्राकृतिक नियमों की धारा अवश्य एक नियम के वशीभूत होकर बहेगी; परन्तु उन्हीं नियमों के आधार पर हम उस धारा की दिशा भी बदल सकते हैं। जंगली देशों की नदियाँ एक ही ओर बहती हैं। सभ्य और शिक्षित जातियाँ अपनी स्वतंत्र बुद्धि से उनकी दिशाओं को बदल कर नहरें निकाल देती हैं। प्राणी वर्ग ने अपने क्षेत्र में कितना परिवर्तन किया है, इससे हम अपनी आँख नहीं मीच सकते। अन्यथा सभ्यता और असभ्यता में कोई भेद नहीं रहे। समस्त जगत् के त्रिभुजों के लक्षण एक से हैं। परन्तु सब प्राणियों का तो एक सा हाल नहीं हैं। बुद्धि अर्थात् निर्वचन करने की योग्यता मनोविज्ञान के अध्ययन का एक विशेष अंग है। इसके नियम गणित, भौतिकी या रसायन के नियमों से भिन्न हैं। मैं और आप एक ही प्रकार नहीं सोचते और न एक सी परिस्थितियों का एक सा ही प्रयोग करते हैं। (क्रमश)

पृष्ठ 2 का शेष-कर्म दर्शन

शरणागतिरप्येषा भक्तानां परिभाषया।।५।।

भक्तों की परिभाषा में उक्त मानसिक स्थिति को ही 'कर्म-फल को भगवान् पर छोड़ना', या 'कर्मफल को भगवान् के लिए अर्पित कर देना', अथवा 'भगवान् की शरण में जाना' इस प्रकार कहा जाता है।

अभिप्राय यह है कि युक्ति और भक्ति दोनों की दृष्टि से मनुष्य को कर्म करके उसके फल के लिए उद्विग्नता को छोड़ कर शान्त और प्रसन्नचित ही रहना चाहिए।

नियन्तुर्जगतां पत्युस्तिष्ठेद् विश्वासमाश्रितः

भगवान् में विश्वास

''सः... याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्।'' (यजु० ४०।८)

अर्थात्, हमारे जीवन के ईश्वर-प्रदत्त पदार्थों में योग्यता और औचित्य का आधार होता है।

मनुष्य को कर्त्तव्य-बुद्धि से कर्म करते हुए उसके फल को समस्त विश्व को नियन्त्रण में रखने वाले कारुणिक भगवान् के निर्णय पर ही छोड़ देना चाहिए। किस कर्म में किसी फल के देने की कितनी और कैसी योग्यता है, इसका निर्णय कर्म करने वाला स्वयं नहीं कर सकता।

इसी विषय का प्रतिपादन नीचे के पद्यों में किया गया है:-

कर्तव्यं कर्म कुर्वन्तो यावद्धि पुरुषायुषम्।

वर्तेरन् मानवाः सर्व इत्येषा वैदिकी श्रुतिः।।१।।

मनुष्यों को अपने जीवन-पर्यन्त कर्तव्य कर्मों को करते रहना चाहिए-ऐसा वेद में कहा गया है।

समुद्योगपरैर्भाव्यं जीवने मानवैः सदा।

परमुद्योगसीमाया धीमान् ध्यानं न विस्मरेत्।।२।।

मनुष्यों को जीवन में उद्योग अवश्य करना चाहिए। परन्तु बुद्धिमान मनुष्य को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि फल के विषय में उद्योग की अपनी सीमा भी होती है। अर्थात्, किसी उद्योग का अभीष्ट फल अवश्य ही होगा, या सदा एक-सा ही फल होगा, यह नहीं कहा जा सकता।

गर्भागतस्य सर्वस्य स्वीय-यत्नानपेक्षया।

ते ते भावा नियम्यन्त एतत् कस्य तिरोहितम्।।३।।

गर्भावस्था में आये हुए प्राणी की अनेक बातों का नियन्त्रण, अपने यत्न के बिना ही, किसी दूसरी शक्ति द्वारा होता है, यह किससे छिपा है?

स्वास्थ्यं बुद्धिस्तथावस्था संपत्तेरथवेतरा।

शरीरस्याकृती रूपं पितरौ च कुलं तथा।।४।।

सर्वस्थापि जनस्यैतज् जीवनेऽतिप्रभावकृत्।

तथापि सर्व एवात्र विषये विवशा ध्रुवम्।।५।।

स्वास्थ्य, बुद्धि, संपत्ति, दारिद्रय, शरीर की आकृति, रूप माता पिता और कुल-इन सब का मनुष्य के जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। तो भी, जन्म के समय इनके विषय में सब कोई विवश होते हैं।

अभिप्राय यह है कि जन्म के समय मनुष्य के स्वास्थ्य, बुद्धि आदि कैसे हैं, इसमें उसका यत्न कुछ नहीं होता। स्पष्टतः इनका नियन्त्रण किसी दूसरी शक्ति द्वारा होता है। और उस नियन्त्रण को बरबस सब को मानना ही पड़ता है।

एवमुद्योगकालेऽपि तत्फलं प्रत्यनुत्सुकः।

नियन्तुर्जगतां पत्युस्तिष्ठेद् विश्वासमाश्रितः।।६।।

इसी प्रकार उद्योग करते समय भी मनुष्य को चाहिए कि वह, उसके फल के सम्बन्ध में उत्सुकता और उद्विग्नता को छोड़ कर, सबको नियन्त्रण में रखने वाले विश्वपति भगवान् के विश्वास के सहारे पर ही रहे।

वर्तमानेन संतुष्टस् तथाप्युन्नत्यभीप्सया।

समुद्योगपरस्तिष्ठेत् फलं न्यस्य परात्मनि।।७।।

मनुष्य को वर्तमान से सन्तुष्ट रहते हुए भी उन्नति की इच्छा से उद्योग में तत्पर होना चाहिए। साथ ही उसे उद्योग के फल को परमात्मा पर छोड़ कर रहना चाहिए।

तदेतज्जीवनस्याहू रहस्यं परमं बुधाः।

तज्ज्ञात्वा येऽनुवर्तन्ते भवबाधास्तरन्ति ते।।८।।

विद्वानों के अनुसार जीवन का परम रहस्य यही है। इसको समझ कर जो इसका अनुसरण करते हैं वे सांसारिक यातनाओं को पार कर जाते हैं।

मानवेन प्राप्तकालं विधीयताम्

प्राप्तकाल कर्तव्य

''कस्तद्वेद यद्द्भुतम्।''

(ऋग्० १।१७०।१)

अर्थात्, जो अभी होने को है उसको कोई नहीं जानता।

'ऐसा हुआ होता तो ऐसा होता', 'भविष्य में कदाचित् ऐसा हो' इस प्रकार के संकल्प-विकल्प मनुष्य के कार्य में कितनी बाधा डालते हैं, यह सब कोई जानते हैं। कर्मशील व्यक्ति को इस व्यर्थ के संकल्प-विकल्प में न पड़ कर अपना कर्तव्य करना चाहिए, इसी का प्रतिपादन नीचे के पद्य में किया गया है:-

यदतीतमतीतं तत् संदिग्धं यदनागतम्।

तस्माद् यत्प्राप्तकालं तन् मानवेन विधीयताम्।।१।।

जो हो चुका वह तो हो ही चुका। जो आने वाला है वह सन्देह-ग्रस्त है। इसलिए मनुष्य को वही काम करना चाहिए जिसका सम्बन्ध वर्तमान से है।

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैरमित्रमर्दय।।(५)

-१.१.२.१

Öæßæ ü हे अग्निदेव परमात्मा! हम आपको नमस्ते करते हैं, अर्थात् आपकी आज्ञा का पालन करते हुए आपकी उपासना करते हुए आपके अनुकूल बनते हैं तथा आपको भी हमारे अनुकूल बनाते हैं। हे प्रभुदेव! हम आपके उपासक गण आप से ओज, बल, शौर्य, धैर्य, साहस, पराक्रम की प्राप्ति के लिए आपकी स्तुति करते हैं, आपका गुणगान करते हैं।

हे दिव्य गुणों के प्रदाता देवों के भी देव महादेव! हम आपके प्यारे भक्तों को आपका महान सुख आनन्द प्रदान करिये किन्तु जो आपकी आज्ञा के विरुद्ध, वेदविरुद्ध, हिंसा आदि करने वाले नास्तिक पापी जन हैं उनको आप भयंकर भय दीजिए। रोग, दुख, कष्ट से पीड़ित कर उन्हें दण्डित करिये जिससे वे आपके विरुद्ध आचरण का त्याग कर वेदमार्ग पर, सत्यमार्ग पर चल सकें व संसार को दु:ख देना बन्द कर सकें।

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः।
अग्निमिन्धे विवस्वभिः।।(६)

-पू० १.१.२.१

भावार्थ-हे परम ब्रह्म परमेश्वर! हम मनुष्य लोग तो मरणधर्मा हैं अर्थात् हमारा शरीर एक दिन छूटने वाला है, यह शरीर तो नष्ट होने वाला है, हे प्रभु! यदि हमें जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होना है तो आपकी भक्ति, उपासना, आज्ञापालन व आपके गुणों को धारण करना पड़ेगा बिना आपकी भक्ति के कोई भी मनुष्य संसार के मृत्यु आदि समस्त दु:खों से छूट नहीं सकता है।

हे परम देव! जो आपका ध्यान करता है आप उसकी बुद्धि को श्रेष्ठ, शुद्ध, सूक्ष्म् वा सात्विक कर देते हैं। अतः हम नित्य प्रातः सायं आपका ध्यान करें आपकी उपासना करें। कभी भी प्रातः सूर्योदय के पश्चात बिस्तर में पड़े न रहें, सोवें नहीं। इसी प्रकार सायंकाल की पवित्र वेला में भी आपकी उपासना कभी नहीं छोड़ें, हे भगवन्! जो व्यक्ति प्रातः सायं की संधि बेला में आपकी उपासना करता है वह इस शरीर को छोड़ने व नये शरीर को प्राप्त करने हेतु प्रस्थान करने की संधि बेला में कभी दु:खी भयभीत नहीं होता है।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

युवा निर्माण ही आर्य वीर दल का मुख्य उद्देश्यः सभा प्रधान सुदर्शन शर्मा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एवं गुरुकुल करतारपुर के संयुक्त तत्वावधान में 25 मई से 31 मई 2023 तक चले सार्वदेशिक आर्य वीर दल पंजाब के प्रान्तीय शिविर के समापन समारोह के अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी, महामंत्री श्री प्रेम कुमार भारद्वाज, मंत्री श्री सुदेश कुमार जी, गुरुकुल करतारपुर के प्रधान श्री ध्रुव कुमार मित्तल, प्रिंसीपल उद्यन आर्य जी एवं वैदिक विद्वान आचार्य आर्य नरेश उद्‌गीथ साधना स्थली हिमाचल मंच पर विराजमान। जबकि चित्र दो में आचार्य आर्य नरेश एवं श्री ध्रुव मित्तल जी सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी को दोशाला एवं स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित करते हुये। चित्र तीन में आर्य वीर दल शिविर के बच्चों को सम्बोधित करते हुये सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी एवं नीचे शिविर में भाग ले रहे बच्चे।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एवं गुरुकुल करतारपुर के संयुक्त तत्वावधान में 25 मई से 31 मई 2023 तक चल रहे सार्वदेशिक आर्य वीर दल पंजाब के प्रान्तीय शिविर का आज विधिवत समापन गुरु विरजानन्द स्मारक ट्रस्ट, गुरुकुल करतारपुर के पवित्र प्रांगण में सम्पन्न हुआ।

समापन समारोह के मुख्य अतिथि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने सभा को सम्बोधित करते हुये कहा कि युवाओं का निर्माण ही राष्ट्र का निर्माण है। उन्होंने कहा कि युवा बचेंगे तो देश बचेगा। सभा प्रधान जी ने कहा कि सबसे पहले मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूं कि आपने बड़े जोश के साथ अपना बहुत ही कीमती समय निकाल कर वैदिक धर्म की जीवन धारा को आचार्यों के उपदेशों द्वारा सुना, और मुझे यह पूरा विश्वास है कि जो आपने इस पावन अवसर पर सुना वह आपके जीवन काल में हर चुनौती के समय आपके काम आएगा। क्योंकि बड़े बड़े लोगों के जीवन सुनकर ही बदले है। ज्ञान का कोई भी शब्द हमारे जीवन की बड़ी बड़ी कठिनाईयों को पार करा कर हमें उन्नति के पथ की ओर ले जाता है। इस शिविर में जो ज्ञान की वृद्धि आपके ज्ञान कोष में हुई है वह आपको दूसरी जगह प्राप्त नहीं होगी। एक नियमित जीवन जो इन दिनों में आपने जिया है वह आपके जीवन के अमूल्य क्षणों में से एक है। कुछ लोगों को तो ऐसे अवसर ही नहीं मिलते जैसा पावन अवसर आपको मिला है। आपके साथ ही मैं आपके माता-पिता को भी शुभकामनाएं देता हूं जिन्होंने आपको इस शिविर के लिए भेजा है। सभा प्रधान जी ने आर्य वीर दल शिविर के कार्यों की प्रशंसा करते हुये कहा कि युवा ही राष्ट्र की सबसे बड़ी धरोहर है। आर्य वीर दल के कार्य बहुत ही प्रशंसनीय है। एक सप्ताह तक चले निरन्तर युवा निर्माण प्रशिक्षण शिविर के समापन अवसर पर व्यायाम, जूडो, कराटे, बलखम्भ, लाठी-भाला, सैनिक परेड आदि का प्रदर्शन किया गया। जिसे देख कर दर्शकों ने तालियों की गड़गड़ाहट से आर्य वीर दल के सदस्यों का उत्साहवर्धन किया। इस कार्यक्रम की सभी ने प्रशंसा की। इससे पूर्व संस्था के प्रधान ध्रुव कुमार मित्तल ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि गुरुकुल करतारपुर का उद्देश्य केवल गुरुकुल में पढ़ रहे बच्चों का निर्माण ही नहीं अपितु समूचे पंजाब प्रदेश के युवाओं को आर्य वीर दल के माध्यम से आगे लाना है। उन्होंने कहा कि युवा निर्माण बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। इसी दिशा में गुरुकुल करतारपुर आर्य वीर दल के माध्यम से पिछले कई वर्षों यह कार्य कर रहा है। प्रधान ध्रुव कुमार मित्तल जी ने सैंकड़ों शिविरार्थियों को प्रेरणा देते हुये कहा कि जो कुछ शिविर में सीखा है उसे अपने जीवन में धारण करें।

गुरुकुल करतारपुर के विशेष सहयोगी एवं शुभचिन्तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम कुमार भारद्वाज जी ने कहा कि हम महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के शिष्य है और संसार के सर्वश्रेष्ठ संगठन आर्य समाज से जुड़े हैं। आप सब जानते ही है कि हमारे उद्देश्य को स्वामी जी ने आर्य समाज के नियमों में स्पष्ट लिखा है कि संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। मैं इस शिविर की सफलता पर सभी को बधाई देता हूं। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मंत्री श्री सुदेश कुमार जी भी विशेष रूप से इस आर्य वीर शिविर के समापन समारोह में शामिल हुये। सार्वदेशिक आर्य वीर दल के वरिष्ठ शिक्षक श्री चांद सिंह योगी ने मुख्य व्यायाम शिक्षक के रूप में बच्चों को सम्बोधित करते हुये कहा कि इतनी गर्मी में जिन माता-पिता ने अपने बच्चों को शिविर में भेजा है वह बधाई के पात्र हैं। बच्चों ने अनुशासन पूर्वक शिविर का प्रशिक्षण प्राप्त किया। कार्यक्रम के अंत में सार्वदेशिक आर्य वीर दल पंजाब इकाई के प्रान्तीय संचालक एवं गुरुकुल करतारपुर के प्रिंसिपल ने सभी माता पिता को बधाई देते हुये कहा कि जिन्होंने अपने बच्चों को शिविर में भेजा है, आर्य वीर दल का सहयोग किया है, मैं उनका हार्दिक धन्यवाद करता हूं। उन्होंने अपने सभी सहयोगी अध्यापक, साथियों, कर्मचारियों एवं प्रबन्धक समिति के सभी महानुभावों का कार्यक्रम में भाग लेने के लिये बहुत बहुत धन्यवाद किया।

उल्लेखनीय है कि समूचे शिविर में आर्य जगत के उद्‌भट्ट विद्वान आचार्य आर्य नरेश वैदिक प्रवक्ता उद्‌गीथ साधना स्थली हिमाचल ने बौद्धिक शिक्षक के रूप में लगातार अपनी सेवाएं शिविर में प्रदान की। इसके पश्चात 1 जून से 6 जून 2023 तक आर्य वीरांगना दल शिविर का भी आयोजन किया जा रहा है। इस शिविर में भी सम्पूर्ण पंजाब प्रान्त से आर्य वीरांगनाएं भाग लेंगी। इस अवसर पर व्यायाम शिक्षक करण आर्य, कनिष्क आर्य, भुवनेश्वर आर्य भी शामिल रहे। इस अवसर पर गुरुकुल के अध्यापक जीवन ज्योति जी, जतिन्द्र कुमार जी, सुरेन्द्र मोहन जी, शुभम शर्मा जी, कमलदीप जी, सुरेश जी, वीरेन्द्र जी, सुखदेव जी भी मुख्य रूप से उपस्थित रहे।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org